

प्रवचन नं. २७९, गाथा-२०१, २०२, शुक्रवार, आषाढ़ कृष्ण १२
दिनाङ्क २०-०७-१९७९

समयसार, निर्जरा अधिकार। २०१-२०२ (गाथा) की टीका। जिसके रागादि अज्ञानमय भावों के लेशमात्र का भी सद्भाव है... क्या कहते हैं? जिस प्राणी को, राग का अंश है, वह अज्ञान है। क्योंकि उसमें ज्ञान नहीं है। चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा ज्ञानमय स्वभाव है। उससे राग चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का हो, परन्तु वह अज्ञान है। अज्ञान का अर्थ : मिथ्यात्वसहित, उसमें ज्ञान का भाव नहीं है। ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा वह ज्ञानमय भाव होना चाहिए, उससे विरुद्ध (भाव) चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प—राग हो परन्तु वह अज्ञान है। अज्ञान का अर्थ—मिथ्यात्वसहित; अपना स्वरूप जो ज्ञान है, उस ज्ञान का राग में अभाव है। आहाहा! समझ में आया ?

जिसके... राग, द्वेष, वासना इत्यादि अज्ञानमय भावों के... मिथ्यात्वसहित। मिथ्या अर्थात् स्वरूप के ज्ञान का भान नहीं और राग है, वह भला है, यह राग, दया, दान, व्रत का विकल्प आया, वह भला है, ऐसा मानना वह मिथ्यात्वसहित अज्ञानमय भाव है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! है? रागादि (अर्थात्) रति, अरति, शोक इत्यादि का जो शुभ-अशुभ विकल्प है, वह अज्ञानमय है। अज्ञानवाला है, ऐसा नहीं; अज्ञानमय है। उसमें आत्मा ज्ञानस्वरूप प्रभु ज्ञानमय का उसमें अभाव होने से मिथ्यात्वसहित अज्ञान अर्थात् उसमें ज्ञान नहीं है, ऐसा अज्ञानमय कहने में आया है। आहाहा! ऐसी बात है।

अज्ञानमय भावों के लेशमात्र का भी... एक अंश भी राग हो परन्तु उसे अपना मानना और राग को अपना मानने से मिथ्यात्व होता है और मिथ्यात्व के कारण उस राग में ज्ञानस्वभाव का अभाव है। आहाहा! वह लेशमात्र का भी... राग अज्ञान है, मिथ्यात्व सहित राग है, उस राग को भला माना तो उसने आत्मा का अनादर किया। राग का अंश अच्छा है, शुभराग को भी भला मानता है, वह भगवान ज्ञानमय चीज है, उसका वह अनादर करता है। राग का अंश जो अज्ञान अथवा ज्ञान का अभाव है, उसका आदर करनेवाला ज्ञानमय आत्मा का अनादर अर्थात् हेय करता है। जो हेय है, उसे उपादेय करता है तो जो उपादेय है, उसे हेय करता है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है, भाई!

भले ही श्रुतकेवली जैसा हो... भले ग्यारह अंग पढ़ा हो, अरबों श्लोक कण्ठस्थ किये हों, अरबों क्या, एक आचारांग में अठारह हजार पद है, एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक है, ऐसे दोगुने। सूयगडांग से दोगुने थाणांग। ग्यारह अंग का सब ज्ञान हो परन्तु वह कहीं ज्ञान नहीं है क्योंकि उस परलक्षी ज्ञान में राग उत्पन्न होता है। आहाहा! और यह राग है, वह ज्ञानमय प्रभु चैतन्य ज्ञानमय जो आत्मा है, उस ज्ञानमय का राग के अंश में अभाव है। इस कारण से मिथ्यात्वसहित का अज्ञानमय राग यहाँ गिनने में आया है। आहाहा!

चाहे तो नौवें ग्रैवेयक गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो'। छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, आतम ज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' इसका क्या अर्थ हुआ? पंच महाव्रतादि, पाँच समिति, गुप्ति का व्यवहारभाव, वह दुःखरूप है-आस्रव है। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो पै (निज) आतम ज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' राग से भिन्न मेरी चीज है, यह राग तो नुकसानकारक, बन्ध का कारण, जहर है; मेरी चीज अमृत से भरपूर है। आहाहा! मैं चिदानन्द, अमृत का पूर मेरी चीज है। आहाहा! ऐसी दृष्टि हुए बिना राग के कण को भी अपना मानता है, भले वह श्रुतकेवली हो। श्रुतकेवली हो, ऐसा नहीं कहा श्रुतकेवली जैसा हो... (ऐसा कहा है।) श्रुतकेवली तो सम्यग्दृष्टि होते हैं। यहाँ तो ऐसा कहा है कि श्रुतकेवली जैसा हो... है न? श्रुतकेवली जैसा हो... बहुत शास्त्र पढ़ा हो। लोगों को समझावे, लाखों लोग इकट्ठे हों, उसमें क्या आया? आहाहा!

अन्दर में राग के विकल्प का छोटे में छोटा कण (हो), मिथ्याश्रद्धासहित का राग, उसे यहाँ अज्ञानमय कहने में आया है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को राग होता है परन्तु उस राग को अपने ज्ञानमय (स्वरूप के साथ) एकत्वरूप नहीं मानता। उस राग को हेय जानकर, परज्ञेयरूप से उसे जानता है। अपना जो ज्ञेय है, वह तो चैतन्य ज्ञानानन्दमय स्वज्ञेय है। उससे राग है, वह परज्ञेय; परज्ञेय परद्रव्य है। आहाहा! उससे लाभ (माने), व्यवहाररत्नत्रय से अपने में लाभ माने, वह तो नहीं। परन्तु यह राग है, वह अज्ञानमय भाव मेरी चीज नहीं है। मेरी चीज में वह चीज नहीं है और उस चीज में मैं नहीं हूँ। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव ने जो देखा और जैसा था, वैसा कहा।

उनका कोई पक्ष, पन्थ नहीं है। वीतराग सर्वज्ञदेव का कोई पक्ष, पन्थ नहीं है। वह तो वस्तु का स्वरूप है। वस्तु का स्वरूप ही यह है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, श्रुतकेवली जैसा हो तथापि... शब्द क्या पड़ा है? देखो! पहले अज्ञानमय भाव कहा है और इसमें ज्ञानमय भाव आमने-सामने लिया है। राग विकल्प जो शुभरागादि है, वह अज्ञान, मिथ्यात्वसहित, क्योंकि राग मेरी चीज है और राग से मुझे लाभ होगा तो वह राग मिथ्यात्वसहित राग अज्ञानमय गिनने में आया है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! भगवान अन्दर ज्ञानमय भाव... उसके सामने लिया। वह अज्ञानमय भाव है तो प्रभु ज्ञानमय भावों के अभाव के कारण... ज्ञानमय जो प्रभु चैतन्यस्वरूप है, उसके ज्ञान का ज्ञान, ज्ञानी का ज्ञान। ज्ञानी शब्द से आत्मा। पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, यह आत्मा धर्मी, उसका पर्याय में जो धर्म—सम्यग्दर्शन, उस सम्यग्दृष्टि को राग होता है, उस राग को अपना नहीं जानता। पर जानकर उसे दृष्टि में से छोड़ देता है। आहाहा!

ज्ञानमय भाव... उसमें यह रागादि शब्द लिया, इतना। परन्तु वह अज्ञानमय भाव मिथ्यात्वसहित था और यह ज्ञानमय भाव। अकेला चैतन्यस्वरूप भगवान, वह ज्ञानमय भाव, ज्ञान का ज्ञान, ज्ञानी का ज्ञान, वस्तु का ज्ञान, उस ज्ञानमय भावों के अभाव के कारण... उस आत्मा के स्वभाव के ज्ञान के अभाव के कारण आत्मा को नहीं जानता;... आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर राग के विकल्प से निर्विकल्प अखण्डानन्द प्रभु, सुख के सागर के जल से भरा पड़ा है। भगवान आत्मा सुखसागर के जल से भरा पड़ा है। आहाहा! उसका अनादर करके राग के कण को, अज्ञानमय को अपना मानता है, वह श्रुतकेवली जैसा हो तो भी (ज्ञानमय भाव के) अभाव के कारण आत्मा को नहीं जानता;... ज्ञानमय भावों के अभाव के कारण आत्मा को नहीं जानता;... इसके अर्थ क्या हुआ? कि आत्मा तो ज्ञानमय भाव है। आहाहा!

जानन... जानन... जानन... स्वभाव। भगवान आत्मा जाननस्वभाव, ज्ञान—अतीन्द्रिय ज्ञान का पिण्ड है। आहाहा! और ऐसे अनन्त-अनन्त गुण, सब अतीन्द्रिय अनन्त-अनन्त गुण। आकाश के प्रदेश अमाप, माप नहीं। आकाश का अन्त आया, (ऐसा है नहीं)। आकाश का कहाँ अन्त है? उसका अन्त नहीं, उसके भी प्रदेश हैं, अनन्त—अन्त नहीं,

उसके जो अनन्त प्रदेश हैं, उससे अनन्तगुणे आत्मा में गुण हैं। आहाहा! वे सब ज्ञानमय, आनन्दमय है। उसमें कोई रागमय गुण नहीं है। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त को अनन्त बार गुणा कर डालो तो भी अन्तिम अनन्त नहीं आता। आहाहा! अन्तिम अनन्त नहीं आता तो अनन्त का अन्तिम एक वह तो एक आता ही नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान ज्ञानमय प्रभु, लेशमात्र राग को अपना मानकर अज्ञानमय में रुकता है, वह भगवान ज्ञानमय को बिल्कुल नहीं जानता। आहाहा! शास्त्रज्ञान हो, वह शास्त्रज्ञान भी परज्ञेय है। शास्त्रज्ञान भी परज्ञेय है। परज्ञेय में निष्ठ है, वह भी स्वज्ञेय में निष्ठ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वह परज्ञेय है। आहाहा! अपने ज्ञान का ज्ञान न हुआ और मात्र शास्त्रज्ञान में रुक गया... आहाहा! तो वह परज्ञेय में निष्ठ अर्थात् लीन है। स्वद्रव्य में से छूट गया है। आहाहा! ऐसा प्रभु का मार्ग है, भाई! आहाहा!

यह कहते हैं, उस ज्ञानमय भावों के अभाव के कारण आत्मा को नहीं जानता;... भगवान आत्मा चिदानन्द प्रभु, राग के अंश को भी अपना माननेवाला श्रुतकेवली जैसा हो तो भी आत्मा को नहीं जानता। आहाहा! निर्जरा अधिकार है। और जो आत्मा को नहीं जानता... भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी जानन-देखन और अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु, ऐसे आत्मा को जिसने नहीं जाना, वह अनात्मा को भी नहीं जानता... अनात्मा राग है, उसे भी नहीं जानता। आत्मा आनन्दमय प्रभु है। आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा, सत् अर्थात् शाश्वत्, चिद्मय और आनन्दमय प्रभु है, उसका जिसे ज्ञान नहीं है, आत्मा का ज्ञान नहीं तो उसे अनात्मा-राग का भी ज्ञान नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म है, प्रभु! अनन्त काल से चौरासी लाख योनियों में अनन्त अवतार हुए। दिगम्बर मुनि अनन्त बार हुआ, परन्तु वह राग की क्रिया करके हुआ। आहाहा! पंच महाव्रतादि, समिति, गुप्ति (पालन किये) परन्तु 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै आतमज्ञान...' राग से भिन्न मेरी चीज़ है, ऐसे अनुभव बिना... आहाहा! 'लेश सुख न पायो' यह महाव्रत के परिणाम और समिति, गुप्ति व्यवहार के परिणाम दुःखरूप हैं, राग है तो 'लेश सुख न पायो' आहाहा! ऐसी चीज़ है। जगत को कठिन पड़ता है। मार्ग तो ऐसा है, भाई! अनन्त तीर्थकर (ऐसा फरमाते हैं)।

महाविदेह में भगवान विराजमान हैं, वहाँ से यह वाणी आयी है। कुन्दकुन्दाचार्य

संवत् ४९ में वहाँ गये थे। दो हजार वर्ष पहले। आठ दिन वहाँ रहे थे और भगवान को आठ दिन सुना, कितनी ही शंका का समाधान श्रुतकेवली मुनि के निकट किया। श्रुतकेवली मुनि थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाये हैं। आहाहा! इसकी टीका करनेवाले मानो भगवान के पास गये हों, ऐसी टीका बनायी है। यह अमृतचन्द्राचार्य। यह कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक, अमृतचन्द्राचार्य की टीका। आहाहा!

कहते हैं, आत्मा को नहीं जानता। भगवान ज्ञातादृष्टा, वह ज्ञान का पुंज है, अतीन्द्रिय सुखसागर के जल से भरपूर है, अतीन्द्रिय श्रद्धा सम्यक् त्रिकाल, हों! अतीन्द्रिय दृष्टि से भरपूर है। सम्यग्दर्शन तो पर्याय है परन्तु अन्तर में त्रिकाली अनादि अनन्त अतीन्द्रिय दृष्टि—श्रद्धा है, उस अतीन्द्रिय श्रद्धा से भरा पड़ा है। आहाहा! सम्यग्दर्शन है, वह तो पर्याय है, परन्तु अन्दर वह पर्याय आयी किसमें से? अन्दर अनादि दृष्टि—श्रद्धा पड़ी है। शुद्ध अनादि अनन्त वह दृष्टि—श्रद्धा का स्वभाव है। आहाहा! वह अनादि दृष्टि ध्रुव है। उस ध्रुव के आश्रय से सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! समझ में आया? तो जिसने आत्मा नहीं जाना, उसने अनात्मा को भी नहीं जाना है। है?

क्योंकि... यहाँ तक तो थोड़ा आया था। साधारण बात (चली थी) **क्योंकि स्वरूप से सत्ता और पररूप से असत्ता...** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा आनन्द, सच्चिदानन्द प्रभु स्वरूप से सत्ता है और राग से असत्ता है। राग से असत्ता है, अपने द्रव्य से सत्ता—अस्तित्व है और परद्रव्य की अस्ति से असत्ता है। आहाहा! अपनी चीज़ से अस्तित्व है और रागादि परचीज़ से नास्तित्व है तो असत् है। परद्रव्य से असत् है, स्वद्रव्य से सत् है। आहाहा! ऐसा प्रभु का मार्ग बहुत सूक्ष्म है, बापू! लोग निर्णय करने का समय भी नहीं निकालते। अरे! ऐसी मनुष्यदेह, उसमें परमात्मा का मार्ग (सुनने को मिला)। आहाहा!

क्योंकि स्वरूप से सत्ता... क्या कहते हैं? कि जिसने आत्मा राग से भिन्न है, उसका भान नहीं (किया) तो उसे अनात्मा—राग का भी ज्ञान नहीं है। आत्मा का ज्ञान नहीं तो राग का ज्ञान भी सच्चा नहीं है। क्यों? है न? **क्योंकि स्वरूप से सत्ता...** अपने स्वरूप से आत्मा है और पररूप से असत्ता है। आहाहा! पंच परमेष्ठी जो जगत में हैं, उनसे भी यह आत्मा असत् है। अपने स्वरूप से अस्तित्व—सत् है। पर के अस्तित्व से आत्मा असत् है।

आहाहा! और पर परमेश्वर भी हैं, वे स्वयं से सत् हैं, उनके स्वयं से और पर से असत् हैं। आहाहा! तो जिसे अपने सत् का यथार्थ ज्ञान नहीं है, उसे सत् से विरुद्ध राग का भी यथार्थ ज्ञान नहीं है। व्यवहार का भी यथार्थ ज्ञान नहीं है। आहाहा! यहाँ तो यह कहते हैं कि व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। आहाहा! ऐसा है नहीं, प्रभु! आहाहा! यह तो अनीन्द्रिय आत्मा, वे रागादि तो स्थूल भाव, अज्ञानभाव, मिथ्यात्वसहित का राग, उसे यहाँ राग में गिना है। स्वरूप का ज्ञान नहीं तो पर का ज्ञान भी नहीं। क्योंकि स्वसत्ता का ज्ञान नहीं तो पर की असत्ता है, उसका भी ज्ञान नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! लोग बाहर से मानकर बैठ जाते हैं, बैठो।

अन्तर आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव और ज्ञान बिना, राग मेरा है, ऐसी चीज़ में रुक जाता है। वह स्वसत्ता को नहीं जानता तो वह परसत्ता को भी नहीं जानता। आहाहा! रागादि दया, दान के विकल्प को भी वह नहीं जानता। क्योंकि निर्विकल्प स्वसत्ता को नहीं जानता, वह परसत्ता को भी नहीं जानता। आहाहा! लॉजिक से तो (बात) है। यह भगवान का मार्ग हठ से मान लेना, ऐसा कुछ है नहीं। लॉजिक, न्याय। निधातु है। नि अर्थात् निधातु में जैसी स्वरूप की स्थिति है, वहाँ ज्ञान को ले जाना, ज्ञान को ले जाना, उसका नाम न्याय कहते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि स्वरूप से सत्ता है, पररूप से असत्ता है। है? स्वरूप से सत्ता और पररूप से असत्ता... आहाहा! भगवान आत्मा अपने स्वरूप से सत्ता है और पंच परमेष्ठी तथा पंच परमेष्ठी का राग, उससे वह असत्ता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। स्वरूप से सत्ता... स्व-रूप ऐसा है न? स्व-रूप—अपना स्वरूप ज्ञानानन्द की सत्ता का ज्ञान, सत्ता है। पररूप, पर-रूप—रागादि, देहादि, पंच परमेष्ठी आदि पररूप। उस पररूप से असत्ता है। स्वयं से सत्ता है और पर से भी सत्ता हो तो सब एक हो जाते हैं। आहाहा! यह तो स्वरूप से सत्ता है, पररूप से असत्ता है। दूसरी भाषा से कहें तो अपने स्वरूप से सत्य है, परस्वरूप से असत्य है। परस्वरूप से भी सत्य हो जाए तो सब एक हो जाते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। यह कोई पण्डिताई की चीज़ नहीं कि बहुत पढ़ा हो तो उसे यह दृष्टि है। यह तो अन्तर के अनुभव की बात है, भगवान! आहाहा! यह बात भगवान अमृतचन्द्राचार्य मूल गाथा में से निकालकर अर्थ करते हैं।

इन दोनों के द्वारा... इन दोनों के द्वारा, कौन दोनों? स्वयं से भगवान ज्ञानमय आनन्दमय है और रागादि परद्रव्य से नहीं। इन दोनों के द्वारा एक वस्तु का निश्चय होता है;... दोनों द्वारा एक वस्तु का निश्चय होता है। मैं मुझमें हूँ और पर मुझमें नहीं, इन दोनों के निश्चय में आत्मा का निश्चय होता है। समझ में आया? दो के निश्चय में दो का निश्चय होता है, ऐसा नहीं। दो के निश्चय में अपना निश्चय होता है। आहाहा! है? इन दोनों के द्वारा एक वस्तु का निश्चय होता है; (जिसे अनात्मा का-राग का-निश्चय हुआ हो...) आहाहा! रागादि दया, दान, व्रत, भक्ति—भगवान की भक्ति, अरे! पंच परमेष्ठी का स्मरण, वह सब राग है। आहाहा! वह राग अनात्मा है। अनात्मा अर्थात् क्या?—कि राग। है? लाईन है न, लाईन? (अनात्मा का-राग का-निश्चय हुआ हो...) कि यह विकल्प है, परसम्बन्धी परसन्मुख के लक्ष्यवाला, ऐसा जिसे निर्णय हुआ हो, उसे अनात्मा और आत्मा दोनों का निश्चय होना चाहिए। एक के निश्चय में दो का निश्चय है। और दो के निश्चय में एक अपना निश्चय अकेला है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई!

वीतरागपरमात्मा जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा तो विराजते हैं। 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' भगवान को ॐध्वनि खिरती है, वहाँ ऐसी वाणी नहीं होती—भगवान को ऐसी (छद्मस्थ जैसी) वाणी नहीं होती। भगवान को ॐध्वनि खिरती है। पूरे शरीर में से, होंठ और कण्ठ कम्पित हुए बिना (ध्वनि खिरती है)। 'ॐ ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' वह ॐकार सुनकर गणधर उसका विचार करते हैं। आहाहा! 'रचि आगम उपदेश' और वह भगवान की वाणी सुनकर सन्त आगम की रचना करते हैं। 'रचि आगम उपदेश भविक जीव संशय निवारे।' भव्य प्राणी लायक हों, वे मिथ्यात्व का नाश करके आत्मा का ज्ञान कर सकते हैं। आहाहा! समझ में आया?

(जिसे अनात्मा का-राग का...) अनात्मा अर्थात् राग, उसका (निश्चय हुआ हो, उसे अनात्मा और आत्मा-दोनों का निश्चय होना चाहिए।) इस प्रकार जो आत्मा और अनात्मा को नहीं जानता... आहाहा! राग को जाने, तब तो राग से रहित अपने आत्मा को भी जाने। क्योंकि राग की सत्ता अपने में है नहीं तो उसे जाने तो मुझमें वह है नहीं, ऐसे आत्मा को जाने। आहाहा! और आत्मा को जाने, वह अनात्मा को जाने।

आहाहा! उसे व्यवहार का सच्चा ज्ञान होता है। क्या कहते हैं? जिसे आत्मा का ज्ञान होता है और अनात्मा का ज्ञान होता है, उसे ही व्यवहार का यथार्थ ज्ञान होता है। व्यवहार मेरा है और व्यवहार से मुझे लाभ होगा, यह बात तो है नहीं। परन्तु व्यवहार का ज्ञान भी सच्चा किसे होता है?

अभी 'करुणादीप' में यहाँ का विरोध आया है कि (समयसार) बारहवीं गाथा में कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि 'अपरमे द्विदा भावे' जो व्यवहार में स्थित हैं, उन्हें तो व्यवहार ही करना चाहिए, ऐसा करुणादीप में अर्थ आया है। एक पत्रिका निकलती है न? करुणादीप। कुछ खबर नहीं है। आहाहा! ऐसा कि बारहवीं गाथा में तो निचली भूमिका है, चौथे, पाँचवें, छठवें में तो व्यवहार ही करना, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। 'अपरमे द्विदा भावे' परन्तु वह बात क्या कहते हैं? कि जो कुछ अपने स्वरूप की दृष्टि, अनुभव तो हुआ। निश्चय से अपने भूतार्थ स्वभाव का आश्रय लेकर सम्यक्त्व हुआ। उसकी पर्याय में अशुद्धता बाकी है और शुद्धता अल्प है, उसको जानना, उसे व्यवहार कहने में आता है। करना और करने से लाभ होगा, यह प्रश्न यहाँ है ही नहीं। क्या हो? शास्त्र के अर्थ करने में भी बड़ी भूल। 'अपरमे द्विदा भावे' (इसका अर्थ) जो परम (भाव में) स्थित नहीं है उसे व्यवहार का उपदेश है, व्यवहार करना, ऐसा (उसका) अर्थ है ही नहीं। टीका में ऐसा अर्थ किया ही नहीं है।

टीका में तो ऐसा अर्थ किया है कि 'अपरमे द्विदा भावे' का अर्थ (यह है कि) उस समय में जितनी अशुद्ध पर्याय है और शुद्धता अल्प है, 'तदात्वे' ऐसा संस्कृत पाठ है, संस्कृत। 'तदात्वे'। 'तदात्वे' (अर्थात्) जाना हुआ प्रयोजनवान है। उस समय में जानता है कि है। वह अभी व्यवहार है। उसे जानना, वह भी व्यवहार है। ऐसी बात है, भगवान! वह तो अपनी पर्याय को जानता है, उसमें यह व्यवहार जानने में आता है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? भगवान लोकालोक को जानते नहीं। लोकालोक को जानते हैं, ऐसा कहना वह तो असद्भूतव्यवहारनय है। वे तो अपनी पर्याय को ही जानते हैं। आहाहा! उसी प्रकार ज्ञानी राग को जानता है, ऐसा उपचार से, व्यवहार से कथन है। राग करना और राग से लाभ होता है, ऐसा वहाँ कहना है, यह तो बात है ही नहीं। आहाहा!

संस्कृत में 'तदात्वे' शब्द पड़ा है। 'तदात्वे' अर्थात्? थोड़ी सूक्ष्म बात है, प्रभु!

जिस समय में जितनी राग की अशुद्धता और शुद्धता उत्पन्न हुई, उस समय में उसे जानना प्रयोजनवान है। दूसरे समय में शुद्धि की थोड़ी वृद्धि हुई और अशुद्धता घटी, उस समय में उसे जानना प्रयोजनवान है। तीसरे समय में शुद्धि की थोड़ी वृद्धि हुई, अशुद्धि घटी, उस समय में उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा पाठ है। संस्कृत में है। परन्तु क्या करे? अपनी दृष्टि से विपरीत / उल्टा अर्थ करे। भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य ने वहाँ व्यवहार करने का कहा है, निचली श्रेणी में व्यवहार ही करना, वही धर्म है। (वे लोग ऐसा मानते हैं)। आहाहा! अरे! प्रभु! तू भी प्रभु है न, प्रभु!

जिसमें जितनी बुद्धि है, इतनी दिये बताये,
वाँको बुरी न मानिये और कहाँ से लाये?

बुरा मत मान। यह वस्तु, बापू! कोई अगम्य वस्तु है। अनन्त काल में एक सेकेण्डमात्र भी इस चीज़ का वेदन, अनुभव किया नहीं। आहाहा! मुनिव्रत धारण किया, दिग्म्बर हुआ, नग्न हुआ, हजारों रानियों का त्याग किया। परन्तु अन्दर में मिथ्यात्व का त्याग नहीं किया। वह भी त्याग है न? आहाहा! बाह्य के त्याग-ग्रहण से तो प्रभु रहित है। क्या कहा?

बाह्य की चीज़ के त्याग-ग्रहण से तो आत्मा रहित ही है। पर का ग्रहण कभी किया नहीं और पर का त्याग करना, वह है ही कहाँ? आहाहा! उसने अपनी पर्याय में कमजोरी से राग किया है, उसका त्याग कहना और स्वभाव का ग्रहण करना कहना, वह भी अभी व्यवहार है। आता है न ३४वीं गाथा में? कि राग का त्याग करता है, वह नाममात्र कथन आत्मा में है। ३४ में पाठ है, समयसार गाथा ३४। यह समयसार है न? आत्मा राग का त्याग करता है, यह भी नाममात्र कथन है। क्योंकि आत्मा ज्ञानमय है। यह ज्ञानमय है, वह रागमय हुआ ही नहीं। ज्ञानमय है उसमें स्थिर हो गया तो राग उत्पन्न नहीं हुआ तो राग का त्याग किया, ऐसा नाममात्र कथन है। परमार्थ से तो राग का त्यागकर्ता आत्मा है नहीं। आहाहा! पर के त्याग-ग्रहण से तो शून्य है, वह शक्ति है—त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति। पीछे ४७ शक्तियाँ हैं न? अनन्त शक्ति-गुण हैं न? उसमें एक गुण ऐसा है, त्यागोपादानशून्यत्वगुण। पर का त्याग और पर के ग्रहण से प्रभु शून्य है। आहाहा!

यहाँ तो राग का त्याग करता है... आहाहा! वह भी नाममात्र कथन है। भगवान् चिदानन्द प्रभु में स्थिर हो गया तो प्रत्याख्यान हो गया। राग का त्याग किया, वह नाममात्र

कथन है। आहाहा! यहाँ तो अभी बाह्य का त्याग करता है वहाँ तो... आहाहा! (हो जाता है)। स्त्री छोड़ दी, दुकान छोड़ दी, धन्धा छोड़ा। अब परन्तु कहाँ अभी ग्रहण किया था, वह छोड़ा? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। (जिसे अनात्मा का-राग का-निश्चय हुआ हो उसे अनात्मा और आत्मा-दोनों का निश्चय होना चाहिए।) इस प्रकार जो आत्मा और अनात्मा को नहीं जानता... इस प्रकार (अर्थात्) इस विधि से.. आहाहा! आत्मा और अनात्मा को नहीं जानता, वह जीव और अजीव को नहीं जानता;... यह राग अजीव है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का राग, वह अजीव है। भगवान जीवस्वरूप है, उससे वह भिन्न जाति है। पहले अधिकार में आया है। जीव अधिकार। व्यवहाररत्नत्रय का राग, वह अजीव है; जीव नहीं। आहाहा! तो उससे जिसने लाभ माना, उसने अनात्मा को अपना माना, उसे आत्मा का ज्ञान है नहीं और (जिसे) आत्मा का, अनात्मा का ज्ञान नहीं है, उसे दोनों का अज्ञान है। आहाहा! जीव और अजीव को नहीं जानता;... उन दोनों का ज्ञान नहीं, वह जीव और अजीव को नहीं जानता। आहाहा! ऐसी बात है। सूक्ष्म पड़े परन्तु वस्तु ऐसी है। परमात्मा ने बनाया नहीं, परमात्मा में वस्तु बनायी नहीं। वस्तु है, वैसी कही है। की नहीं है, बनायी नहीं है। जैसी वस्तु है, वैसा ज्ञान में आया, वैसा कथन द्वारा, वाणी द्वारा आया। वह भी—वाणी भी उनकी नहीं है। आहाहा!

भगवान आत्मा स्व-परप्रकाशक है, तो वाणी भी स्व-पर कहनेवाली है। वह वाणी का स्वभाव है। आहाहा! भगवान आत्मा का स्व-पर जानने का स्वभाव है और वाणी में स्व-पर कहने का स्वभाव है। वह वाणी। आहाहा! भगवान के श्रीमुख से यह वाणी निकली—ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! कठिन काम है, भाई! आहाहा! वस्तु अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, पूर्ण आनन्द और पूर्ण अतीन्द्रिय गुणों का भण्डार भरा है, उसकी जिसे दृष्टि नहीं, स्व का आश्रय नहीं और उसमें नहीं है, ऐसे राग का आश्रय है तो उसे अनात्मा और आत्मा का दोनों का ज्ञान नहीं है। दोनों का ज्ञान नहीं है तो जीव-अजीव का ज्ञान नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है।

व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प जो राग है, वह अजीव है। जीव होवे तो जीव में से निकल नहीं जाएगा। जीव में से निकल जाता है। आहाहा! व्यवहार, अजीव का जिसे

यथार्थ ज्ञान नहीं, उसे जीव का भी (ज्ञान) नहीं है। आहाहा! जीव और अजीव को नहीं जानता; तथा जो जीव और अजीव को नहीं जानता... आहाहा! वह सम्यग्दृष्टि ही नहीं है। आहाहा! साधुपना और पंचम गुणस्थान श्रावक वह तो कोई अलौकिक बातें हैं। यह तो अभी प्रथम सम्यग्दर्शन की बात चलती है। आहाहा! सम्यग्दर्शन बिना तो पाँचवाँ गुणस्थान श्रावक भी नहीं होता, सम्यग्दर्शन बिना साधु भी नहीं होता। यह तो कठिन बात है। यहाँ तो पहली सम्यक् दृष्टि की बात (चलती है)। जीव-अजीव को नहीं जानता, वह सम्यग्दृष्टि नहीं है। आहाहा!

इसलिए रागी (जीव)... राग के रागवाला जीव, मिथ्यादृष्टि ज्ञान के अभाव के कारण... सम्यग्ज्ञान के अभाव के कारण। आहाहा! राग को अनात्मा (स्वरूप) नहीं जाना तो आत्मा को जाना नहीं, तो ज्ञान के अभाव के कारण सम्यग्दृष्टि नहीं होता। दोनों के ज्ञान के अभाव के कारण वह सम्यग्दृष्टि होता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। २०१-२०२ (गाथा), यह तो निर्जरा अधिकार है।

भावार्थ, भावार्थ है न? पण्डित जयचन्दजी ने अर्थ किया है, पण्डित जयचन्दजी। यहाँ 'राग' शब्द से अज्ञानमय रागद्वेषमोह कहे गये हैं। यहाँ सम्यग्दृष्टि के राग की बात नहीं है। वह तो ज्ञान का ज्ञेय है, सम्यग्दृष्टि को तो राग ज्ञान का ज्ञेय है। ज्ञान का अपना स्वरूप राग है, ऐसा नहीं है। आहाहा! पहले तो वस्तु समझने में कठिन, सुनने को मिलती नहीं। अभी तो जहाँ हो, वहाँ व्यवहार करो, व्रत करो, अपवास करो, भक्ति करो, यात्रा करो। करना, वहाँ मरना है। मैं राग का कर्ता हूँ और पर की, शरीर की हिलने-चलने की क्रिया मुझसे हुई है ऐसा करना, मानना वही आत्मा का मरण है। वह आत्मा का अनादर है। आहाहा! आत्मा ज्ञातादृष्टा है, उसे ऐसा नहीं मानकर, राग से अपने को लाभ मानता है। आहाहा! है?

'राग' शब्द से अज्ञानमय रागद्वेषमोह कहे गये हैं। और 'अज्ञानमय' कहने से मिथ्यात्व-अनन्तानुबन्धी से हुए रागादिक समझना चाहिए, ... मिथ्यात्व से राग मेरा है, ऐसी मान्यता में जो राग आया, उस राग की बात है। ज्ञानी को राग आता है, उसे ज्ञान उसका है, राग नहीं। आहाहा! राग होता है और थोड़ा बन्ध भी होता है, जब तक राग है, तब तक बन्ध भी होता है। ज्ञानी को दसवें गुणस्थान तक लोभ का अंश है तो दसवें में भी

छह कर्मों का बन्ध होता है परन्तु ज्ञानी उस राग का स्वामी नहीं होता। राग मेरा नहीं है, इस अपेक्षा से उसने राग से भिन्न कर दिया है। बाकी ज्ञानी को ख्याल है कि मेरे परिणमन में जितना राग है, उसका-परिणमन का कर्ता मैं हूँ, वह परिणमन कोई जड़ से हुआ है, कर्म से हुआ है - ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? मेरे परिणमन में राग आया, उस परिणमन का कर्ता मैं हूँ। ४७ नय, प्रवचनसार, उसमें यह नय चला है। ज्ञानी धर्मात्मा गणधर हो, तथापि भगवान के विनय का राग आया, उसका कर्ता मैं हूँ, परिणमन का कर्ता मैं हूँ, इस अपेक्षा से (कर्ता)। करनेयोग्य है, ऐसी बात नहीं है। आहाहा! तथापि मैं कर्ता हूँ, ऐसा मानता है। अरे! आहाहा!

मिथ्यात्व के बिना चारित्रमोह के उदय का राग नहीं लेना चाहिए;... मिथ्यात्व बिना अकेला राग आता है, तो वह यहाँ नहीं लेना। यहाँ उसकी बात नहीं है क्योंकि अविरत-सम्यग्दृष्टि... चौथे गुणस्थान में, पाँचवें में, छठवें में चारित्रमोह के उदय सम्बन्धी जो राग है... सम्यग्दृष्टि को जो राग आया है, वह राग। ज्ञानसहित है;... भानसहित है। राग का ज्ञान होता है। आहाहा! वह भी राग है तो ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? ज्ञानी की पर्याय में ज्ञान का स्व-परप्रकाशक अपना स्वभाव से राग को जानता है, ऐसा कहना व्यवहार है, परन्तु वास्तव में राग सम्बन्धी ज्ञान और अपने सम्बन्धी का ज्ञान अपनी पर्याय में अपने कारण से उत्पन्न होता है। आहाहा! अब इतना सब कब (समझे)? आहाहा! राग को जानता है—ऐसा कहना, वह व्यवहार है। राग को कर्ता है, ऐसा कहना; करनेयोग्य है, ऐसा कहना वह तो मिथ्यात्व है परन्तु परिणमन है तो राग का कर्ता मैं हूँ, ऐसा जानना, वह तो सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि को तो बन्ध होता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्ध होता नहीं, यह तो दृष्टि की अपेक्षा से कहा है। बन्ध होता न हो तो चारित्र लेने की आवश्यकता नहीं है। ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु है, यह तो एक दृष्टि की अपेक्षा से कहा है। भोग से निर्जरा होवे तो भोग का त्याग करके स्वरूप में स्थिर होने का, ठहरने का तो रहता नहीं। ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? राग का अंश जब तक है, उतने अंश में ज्ञानी को भी बन्ध होता है। आहाहा! भले कर्म में स्थिति, अनुभाग अल्प हो परन्तु बन्ध है। भाव बन्ध है, वह (कर्म का) द्रव्यबन्ध है। आहाहा!

मुमुक्षु : अनन्त संसार का बन्ध ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त संसार का बन्ध है नहीं। ज्ञानी को अनन्त संसार है नहीं। एक, दो, चार भव हों, वह ज्ञान का ज्ञेय है। आहाहा! ज्ञान का ज्ञेय है। ज्ञान शब्द से अपने ज्ञान में वह पररूप से ज्ञेय है। वह भव अपना है, भव और भव का भाव अपना है, ऐसा ज्ञानी नहीं मानता।

मुमुक्षु : राग मेरी पर्याय में है, ऐसा जानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में है, ऐसा जानता है। आहाहा! ऐसी बात है। कठिन बात है। वर्तमान में तो ऐसी गड़बड़ हो गयी है न! सब प्ररूपणा व्यवहार। ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो। प्रभु! बहुत अन्तर है, प्रभु! आहा! आहाहा! वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ की उपस्थिति में जो बात आयी है, वह बात पूरी अलग है। आहाहा!

अविरत-सम्यग्दृष्टि इत्यादि को चारित्रमोह के उदय सम्बन्धी जो राग है, सो ज्ञानसहित है;... क्या कहा? ज्ञानसहित (अर्थात्) भान है कि मैं तो आनन्द हूँ और राग दुःख है। ऐसा ज्ञानी को भान है। ...व्यवहार से है, ऐसा कहने में आया है। व्यवहारनय का विषय है या नहीं? नहीं है—ऐसा नहीं है। आदरणीय नहीं है। परन्तु व्यवहारनय का विषय है, रागादि हैं और बन्ध है, उसे जानता है। आहाहा! ज्ञानी को भोग निर्जरा का हेतु है, ऐसा मानकर स्वच्छन्द करे, (ऐसा नहीं चलता)। हम समकिति हैं, पहले आ गया है। हम समकिति हैं, हमारे क्या है? (ऐसे स्वच्छन्द करेगा) तो मर जाएगा, सुन न!

अन्तर में अनुभव हुआ, आनन्द का स्वाद आया, उस अपेक्षा से राग को दुःख जानता है और राग से लाभ मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है। आहाहा! वह जैन ही नहीं है।

घट-घट अन्तर जिन बसे, घट-घट अन्तर जैन;

मत मदिरा के पान सौं, मतवाला समझे न।

‘घट-घट अन्तर जिन बसे,’ परमात्मा जिनस्वरूप घट-घट में विराजमान है और जैनपना भी घट में है। उस स्वरूप का ज्ञान करना और राग से भिन्न करना वह ज्ञान, जैनपना अन्तर में होता है। कोई बाह्य क्रिया घट जाए तो समकित हो, (ऐसा नहीं है)। चक्रवर्ती को छह

खण्ड का राज होता है। आहाहा! और दिगम्बर साधु अट्टाईस मूलगुण पालन करता हो तो (भी) मिथ्यादृष्टि है (क्योंकि) राग को अपना मानता है और चक्रवर्ती छह खण्ड का राग (करता हो), छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक हों... आहाहा! तथापि उनमें राग नहीं है, वह चीज़ मेरी नहीं है, मुझमें नहीं है, उसमें मैं नहीं हूँ, (ऐसा मानता है)। आहाहा!

इन्द्र के इन्द्रासन, करोड़ों इन्द्राणियाँ हैं। अभी सौधर्म इन्द्र एक भवतारी है। सौधर्म इन्द्र है, बत्तीस लाख विमान है, एक-एक विमान में असंख्य देव रहते हैं बहुत से विमानों में। तो एक भवतारी है, शास्त्र में (पाठ है)। वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। वे भी हजारों इन्द्राणियाँ और बत्तीस लाख विमानों (को अपना नहीं मानता)। अन्दर राग का कण उत्पन्न होता है, वह भी मेरा नहीं तो वह चीज़ तो दूर रही। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो परमात्मा त्रिलोकनाथ के पेट की बात है। उस पेट का (अभिप्राय का) स्पष्टीकरण होता है। यह बात है, प्रभु! किसी को ठीक न लगे, एकान्त लगे। कहते हैं, एकान्त है... एकान्त है... एकान्त है... कहो, प्रभु! तो भी प्रभु है। पर्याय में भूल है तो है; वस्तु तो प्रभु है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आहाहा! सम्यग्दृष्टि को चारित्रमोह सम्बन्धी राग है, वह ज्ञानसहित है। सम्यग्दृष्टि उस राग को कर्मोदय से उत्पन्न हुआ रोग जानता है... देखो! राग को रोग जानता है। धर्मी राग को काला नाग देखता है। आहाहा! समयसार, मोक्ष अधिकार में आया है, राग को विषकुम्भ कहा है, जहर का घड़ा है। आहाहा! प्रभु अमृत का सागर है, प्रभु आत्मा अमृत का सागर है और शुभराग जहर का घड़ा है। यह तो अमृत का सागर है। आहाहा! तुम्हारा वह 'सागर' गाँव नहीं, हों! पण्डितजी! अमृत का सागर। आहाहा! ज्ञानी का राग है, सो ज्ञानसहित है; सम्यग्दृष्टि उस राग को कर्मोदय से उत्पन्न हुआ रोग जानता है और उसे मिटाना ही चाहता है;... समकित्ती राग को रखना नहीं चाहता। आहा! राग मिटाना ही चाहता है। आहाहा! उसे उस राग के प्रति राग नहीं है। राग के प्रति राग नहीं है। आहाहा! राग मेरा है, ऐसी बुद्धि ज्ञानी को नहीं है। आहाहा!

और सम्यग्दृष्टि के राग का लेशमात्र सद्भाव नहीं है, ऐसा कहा है सो इसका कारण इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि के अशुभराग तो अत्यन्त गौण है... अशुभराग

आता है, सम्यग्दृष्टि को आर्तध्यान होता है, रौद्रध्यान होता है, वह तो अत्यन्त गौण है। और जो शुभराग होता है, सो वह उसे किञ्चित्मात्र भी भला (अच्छा) नहीं समझता... अच्छा नहीं समझता। आहाहा! अशुभराग भी आता है परन्तु गौण है। शुभराग की मुख्यता है, तथापि उसे भला नहीं समझता। आहाहा! ऐसी बात है।

उसके प्रति लेशमात्र राग नहीं करता,... आहाहा! और निश्चय से तो उसके राग का स्वामित्व ही नहीं है। क्या कहते हैं? देखो! आहाहा! जो अपनी चीज नहीं है, उसका वह स्वामी नहीं है। सम्यग्दृष्टि राग का स्वामी नहीं है। आहा! आत्मा में एक स्वस्वामित्व नाम का गुण है। सैंतालीस शक्तियों में अन्तिम गुण है। सैंतालीस—४ और ७ गुण है न? इसमें पीछे है, पीछे। स्वस्वामीसम्बन्ध नाम का गुण आत्मा में है। धर्मी अपने निर्मल द्रव्य, गुण, पर्याय को अपना स्व मानता है। उपादेयरूप से द्रव्य है परन्तु जानता है वह तो अपने द्रव्य, गुण, पर्याय निर्मल है, उसे अपना मानता है, उसका वह स्वामी; राग का स्वामी नहीं। आहाहा! समझ में आया? इसलिए उसके लेशमात्र राग नहीं है। इस कारण से सम्यक्त्वी को लेशमात्र राग नहीं है। इस कारण से कहा है। मिथ्यात्व और अज्ञान को अपना नहीं मानता, उस कारण से (कहा)। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)